शुल्क १५ वर्ष
२१००/- रुपये

विज्ञप्ति

एक प्रति ८/- रुपये
वार्षिक २५०/- रुपये

तेरापंथ की केन्द्रीय गतिविधियों का सर्वाधिक लोकप्रिय साप्ताहिक मुखपत्र

विज्ञप्ति (साप्ताहिक) : वर्ष १९ : अंक ६ : नई दिल्ली : १२-१८ मई २०१३

परम पावन आचार्यश्री महाश्रमण आदि श्रमण ३७ तथा महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी आदि श्रमणी ४१, सर्व ७८, १० मई को वाव पधार गए हैं। यहां १३ मई को अक्षय तृतीया का भव्य समायोजन होने जा रहा है। १५ मई को पूज्यप्रवर राजस्थान की ओर प्रस्थान करेंगे। १९ मई को आचार्यप्रवर का ५२वां जन्मदिवस और २० मई को पट्टोत्सव आयोज्य है। १८ जून को आचार्यवर जोधपुर पधार जाएंगे।

परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ की तृतीय वार्षिकी (पुण्यतिथि) पर परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण द्वारा समुच्चारित गीत

गणनायक गुरुवर महाप्रज्ञ चरणों में वन्दन करते हैं।
विभुवर की वत्सलता-करुणा-स्फुरणा को मन में स्मरते हैं।।

श्रुत-आराधन में निरत रहे, समता से कितने कष्ट सहे।
आगम-वाङ्मय व्याख्या पढ़कर जन ज्ञान खजाना भरते हैं।।

चिन्तन में कितना सौष्ठव था, सम्भाषण में गुरुगौरव था।
ओजस्वी प्रवचन श्रोता के अज्ञानतिमिर को हरते हैं।।

प्रेक्षा का पाठ पढ़ाया था, आध्यात्मिक बोध कराया था।
आत्मा से आत्मा को पाकर प्राणी भवसागर तरते हैं।।

लौकिक विद्या भी भले चले, लोकोत्तर विद्या खूब फले।
जीवनविज्ञान-शिलोच्चय से परिवर्तन झरने झरते हैं।।

तुलसीपटधर का चरम दिवस, श्रद्धानत भक्त मनुज मानस।
स्मृतियों की भू पर 'महाश्रमण' गुरुराज आज संचरते हैं।।

लय :- महावीर तुम्हारे चरणों में....।

'गणं सरणं गच्छामि' विषय पर
परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण का मंगल उद्‌बोधन

आर्हत वाङ्मय में कहा गया है--**एगप्पमुहे।** एक को प्रमुख मान कर के चलो या एक आत्मा की ओर अभिमुख होकर चलो। अध्यात्म की साधना में यह जरूरी है कि साधक व्यक्ति आत्ममुखी बन जाए, आत्मा की ओर उसका मुंह हो जाए। दूसरे शब्दों में कहें तो वह अन्तर्मुखी बन जाए। बहिर्मुखता है तो मानना चाहिए कि अभी साधना में, साधना के विकास में कमी है। लेकिन अन्तर्मुखता है तो मानना चाहिए कि साधक साधना में आगे बढ़ रहा है।

व्यक्ति साधना कहां करे, कैसे करे? यह एक प्रश्न है। आगम वाङ्मय में एकाकी साधना का भी विधान है और संघबद्ध साधना की बात भी आती है। एकाकी साधना का पथ वह व्यक्ति स्वीकार कर सकता है, जिसमें विशिष्ट या एकाकित्व के लायक अर्हता प्राप्त हो जाती है, अन्यथा एकाकी होना बहुत खतरनाक हो सकता है। संघबद्ध साधना और एकाकी साधना दोनों का महत्त्व है। अर्हता प्राप्त हो जाने के बाद एकाकी साधना वरदान है, किन्तु अर्हताशून्य अवस्था में एकाकी साधना अभिशाप भी बन सकती है। जब एकाकी साधना कठिन है और बहुत आगे की बात है तो ऐसे में दूसरा विकल्प है संघबद्ध साधना का, यानी गण में रहकर साधना करना।

आज का निर्धारित प्रवचन विषय है--**गणं सरणं गच्छामि**--मैं संघ की शरण में हूं। संघ हमारे लिए आश्वास है, विश्वास है, त्राण है, शरण है। संघ में साधक को आलंबन प्राप्त होता है। शारीरिक कठिनाई आए तो संघ संभाल लेता है, मानसिक कठिनाई में भी संघ संभाल लेता है। मन में अस्थिरता आ गई तो संघ में संभालने वाले मिल सकते हैं। जीवन में कभी-कभी आदमी पतनोन्मुख हो सकता है। गिरे हुए को अथवा गिरते हुए को सहारा देकर उठाने और संभालने वाला व्यक्ति बड़ा उपकारी होता है।

साधु जीवन में कभी-कभी मन में अस्थिरता का भाव भी आ सकता है। दसवेआलियं की चूलिका में सुन्दर चित्रण है--कभी ऐसा भाव आ जाए कि क्यों न मैं साधुपन को, संघ को छोड़कर घर चला जाऊं। ऐसी भावना आ जाए तो साधु को अठारह स्थानों का अनुप्रेक्षण करना चाहिए। उनके अनुचिंतन से गिरने से बचने का मौका मिल सकता है। कोई गिर जाए तो उसको देखकर हंसने में कौन-सा बड़प्पन है?

गच्छतः स्खलनाक्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, शमा दधति साधवः।।

चलते हुए व्यक्ति से कभी स्खलना भी हो सकती है, कभी पांव फिसल भी सकता है। इस तरह के फिसलन का पथ जहां आए, वहां परस्पर हस्तावलंब ले लिया जाए तो फिसलन से कुछ बचाव हो सकता है। सावधानी के बावजूद भी कोई गिर जाए तो उस पर हंसना कोई उत्तम वृत्ति नहीं होती है। गिर गया तो तत्काल उसे संभालने की चेष्टा करना, उसे उठाना, देखना, कहीं उसके चोट तो नहीं आ गई? चोट आई है तो उसके इलाज का प्रयास करना, यह तो एक बड़प्पन वाली बात है, मानवीयता है।

परमपूज्य गुरुदेव तुलसी, जिनका प्रलंब शासनकाल रहा, हमने उन्हें देखा। कितनों-कितनों को उन्होंने अपने शासनकाल में दीक्षित किया। दीक्षित होने के बाद कुछ साधु-साध्वियां फिसल भी गए, यानी धर्मसंघ से अलग भी हो गए। गुरुदेव तुलसी ने गिरने की स्थिति में आने वालों को, गिरते हुए

को संभालने का कितना प्रयास किया था। गुरुदेव तुलसी वि.सं.२०३३ में सरदारशहर में गोठीजी के मकान में विराज रहे थे। उस समय गुरुदेव के पास एक वरिष्ठ साधु आए और संघ से अलग होने की इच्छा व्यक्त की। अगर मैं भूल न करूं तो उस समय गुरुदेव ने बड़े अपनत्व से अपना हाथ उनके मुंह पर रखा कि ऐसी बात, संघ से अलग होने की बात क्यों कहते हो? यानी फिसलते हुए को उन्होंने अपनी ओर से संभालने का प्रयास किया। यह अलग बात है कि बाद में वे संघमुक्त हो गए, किन्तु गुरुदेव ने तो उन्हें संभालने का प्रयास किया था।

दूसरा प्रसंग--गुरुदेव तुलसी वि.सं. २०३६ के आसपास दिल्ली पधारे। प्रवास के बाद दिल्ली से विहार किया, उस समय गुरुदेव को पता चला कि एक संत विचलित हो रहे हैं। किसी बात को लेकर उनके मन में कोई उद्वेलन था। मुझे याद है, विहार के उपरान्त गुरुदेव ने दो संतों--मुनिश्री मधुकरजी स्वामी और मुनिश्री किशनलालजी स्वामी को उनसे बात करने के लिए वापस दिल्ली भेजा। गुरुदेव के निर्देश पर दोनों संत दिल्ली में मुनिजी से मिले, बातचीत की, उन्हें कुछ मजबूत करने में सफल हुए और अपने साथ गुरुदेव तुलसी के पास लेकर आए। इस प्रकार जीवन में फिसलन के अवसर भी आ सकते हैं, पर वे महापुरुष और धन्यपुरुष हैं जो फिसलन से किसी को उबारने और बचाने का प्रयास करते हैं, सहारा देते हैं। संघ में तो यह सहारा मिलना संभव है, लेकिन एकाकी साधना में इस तरह का सहारा कौन देगा? इसलिए कहा गया--गणं सरणं गच्छामि--मैं गण की शरण में जाता हूं, क्योंकि गण मुझे त्राण देने वाला, संभालने वाला है, मेरा आश्रयदाता है।

भावावेग में आदमी कभी कई बार अस्तव्यस्त हो जाता है। कहा गया है--**'अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे'**--यह पुरुष अनेक चित्त वाला है। कौन-सा इमोशन कब प्रखर हो जाए और आदमी पथच्युत होने लग जाए, कहना कठिन है।

साधु परीषहों को क्यों सहन करे? इस संदर्भ में परीषहों को सहन करने के दो उद्देश्य बताए गए--निर्जरा और मार्गाच्यवन। मार्ग से च्युत न हो जाऊं, इसलिए परीषहों को सहन करना चाहिए और निर्जरा हो, कर्म कटें, इसलिए भी परीषहों को सहन करना चाहिए। संघ एक ऐसी शरण है, जहां मार्गाच्यवन की प्रेरणा भी मिल सकती है और मार्गाच्यवन में सहयोग देने वाले व्यक्ति भी मिल सकते हैं। दूसरी बात--शारीरिक कठिनाई आने पर भी संघ में संभाल हो सकती है, होती है। कोई अकेला है, ऐसी स्थिति में वृद्ध और बीमार हो गया तो उसे कौन संभाले, कौन उसकी सेवा करे? हर जगह वृद्धाश्रम तो नहीं होते जहां आश्रय मिल जाए और वृद्धाश्रम मिल भी गया तो समझें पुनः समुदाय में आ गया। वृद्धाश्रम में आने का मतलब ही है किसी रूप में पुनः समुदाय में आ जाना, जहां से चले थे, फिर वहीं पहुंच जाना। वार्धक्य और जरा की स्थिति में संघ संभालता है तो संघ त्राण बन गया। इसलिए गणं सरणं गच्छामि। मैं गण की शरण में हूं।

व्यक्ति बड़ा नहीं होता, बड़ा होता है संघ। 'यूनिटी इज स्ट्रेंथ'--एकता में शक्ति होती है। यह भी कहा गया है--संघे शक्तिः कलौ युगे। कलियुग में संघ में शक्ति होती है। व्यक्ति की सामर्थ्य बहुत थोड़ी और संघ की सामर्थ्य बहुत बड़ी होती है, इसलिए उसका महत्त्व भी बड़ा होता है। व्यक्ति कभी स्थायी नहीं होते। वे तो आते-जाते रहते हैं। भारत के इतिहास को हम देखें, विशेषकर स्वतंत्र्योत्तर इतिहास को तो यहां कितने राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री आए और गए, पर भारत तो उनके साथ नहीं गया। भारत अभी भी विद्यमान है और चल रहा है। महत्त्व व्यक्ति का नहीं, महत्त्व संघ का होता है और मैं तो कहता हूं कि कोई मुझसे पूछे कि संघ बड़ा या आचार्य? तो मैं कहना चाहूंगा कि आचार्यों से बड़ा संघ और शासन है। आचार्य भी कितने आते हैं और महाप्रयाण कर जाते हैं, पर संघ हमारा

अक्षुण्ण है, चल रहा है, इसलिए आचार्यों से भी बड़ा हमारा भैक्षव शासन, तेरापंथ शासन है। हां, मुझे कोई यह पूछे कि आपके गण में सबसे बड़ा कौन? तो मेरा उत्तर होगा कि हमारे गण में सबसे बड़े आचार्य होते हैं। उनसे बड़ा हमारे गण में कोई नहीं है। बड़ा तो कोई है ही नहीं, उनके समान भी कोई नहीं है। सबका आसन उनके आसन के नीचे है। शासन सबसे बड़ा और शासन में सबसे बड़े आचार्य होते हैं, गणपति होते हैं। इसलिए गण के महत्त्व के बाद या उसके साथ गणपति का महत्त्व है, क्योंकि गण का संचालन गणपति के द्वारा होता है, इसलिए गण को और उसके बाद गण के आचार्यों को हम सर्वोच्च मानें।

शासन में विकास करने का अवसर मिलता है। वहां सेवा होती है, वहां आश्वासन मिलता है, वहां शरीरिक, मानसिक, भावात्मक समस्याओं का समाधान मिलने की संभावना रहती है। इसलिए गण की शरण छोड़ने का कभी विचार भी झटपट नहीं आना चाहिए। छोटी-मोटी तुच्छ बातों को लेकर या आकंक्षापूर्ति के अभाव में कोई गण की शरण को छोड़ने की बात सोचता है और छोड़ देता है तो मैं उसे अभागा व्यक्ति ही मानूंगा। कोई अभागा ही भैक्षवगण जैसे गण को छोड़ता है। मैं तो कहूंगा--ऐसा दुर्भाग्य किसी को न मिले। ऐसा विचलन और फिसलन कभी न आए कि गण को छोड़ना पड़े। गण को छोड़कर जिसे इधर-उधर निरुद्देश्य घूमना पड़े, समुचित आश्रय भी जिसे न मिले, उसे अभागा नहीं तो और क्या कहें? संघ या गण के प्रति अटूट निष्ठा रहनी चाहिए। जियेंगे तो गण में जियेंगे, आचार और मर्यादा का पालन करते हुए अन्तिम श्वास लेंगे तो गण में ही लेंगे--मन में ऐसा अटूट संकल्प होना चाहिए। गण के साथ-साथ गणपति के प्रति भी निष्ठा होनी चाहिए। शासनपति हमें जो भी दृष्टि या दिशादर्शन दें, वह हमारे लिए अवश्य पालनीय और परम सम्मान्य होनी चाहिए।

हम भैक्षवशासन में जी रहे हैं। परमपूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी जैसे मनीषी आचार्य, निकट अतीत में इस भैक्षव गण में हुए, जिनमें कितना साधना का विकास था, कितना ज्ञान का विकास था। और किस प्रकार वे समस्या का समाधान देने का प्रयास करते थे। समस्याग्रस्त व्यक्ति उनके पास आते तो वे उनकी समस्या को सुनने-समझने का प्रयास करते और जो भी समाधान संभव होता, उसे देने का प्रयास करते थे।

इस प्रकार गण अपने आप में एक समाधान है। गण में छोटी-मोटी तकलीफ भी आ जाए तो उस तकलीफ को भी सहन कर लेना चाहिए इस भावना के साथ कि हम जिस गण में हैं, वह हमारा सहारा है, आश्रय है। कभी कुछ व्यवस्था संबंधी कठिनाई आ जाए, बड़ों की, आचार्यों की अकृपा हो जाए, उनकी दृष्टि कड़ी हो जाए, वे कुपित हो जाएं तो भी गण के सदस्यों का धर्म है कि वे उस स्थिति में भी मजबूत रहें, दृढ़ रहें और गणपति के प्रति मन में कभी भी अन्यथा भाव न लाएं, बल्कि उनके प्रति और ज्यादा विनय करने का प्रयास करें। मौका हो तो पूछें कि आपके मन में मेरे प्रति क्या ऐसी कोई अकृपा की बात है? कई बार तो बिना किसी बात के भी लोगों के मन में भ्रान्ति हो जाती है कि मेरे प्रति गुरु की दृष्टि कड़ी है। ऐसी भ्रान्ति हो जाए तो अवसर देखकर विनम्र भाव से स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए कि ऐसी कोई बात उनके मन में है क्या? अगर है तो गुरु के मनोनुकूल बनकर उस बात को साफ करने का प्रयास करना चाहिए।

अप्रसन्नो गुरुर्भूयात्, किंचित् कारणमाश्रयन्।
प्रसन्नीकुरुतां शिष्यो, नम्रवाक्यनिवेदनात्।।

गुरु कभी अप्रसन्न हो जाएं तो गुरु को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिए, गुरु-कृपा की

इच्छा करनी चाहिए कि मेरे गुरु मुझ पर कृपावान और प्रसन्न बने रहें। भूल से भी यह भाव मन में न आए कि नाराज हैं तो हैं। अकृपा का कारण खोजना चाहिए और कारण मालूम होने पर उसके निवारण का उचित प्रयत्न करना चाहिए। जहां गणपति सार-संभाल करते हैं, संरक्षण देते हैं, यथासंभव, यथोचित व्यवस्था प्रदान करते हैं, पथदर्शन देते हैं, ऐसे गण की शरण में हम बने रहें।

भैक्षण गण की अपनी व्यवस्थाएं हैं। यहां सदस्यों की चित्तसमाधि का यथोचित प्रयास होता है। हालांकि यहां सबकी इच्छा पूरी होती है, ऐसा दावा नहीं किया जाता, पर यहां चित्तसमाधि का यथासंभव प्रयास होता है, ऐसा कहा जा सकता है। जहां गण के छोटे-बड़े सदस्यों की चित्तसमाधि पर ध्यान ही न दिया जाए, वहां गण के सदस्यों की श्रद्धा, आस्था और विश्वास कैसे प्राप्त होगा? हमें चिंतन करना चाहिए कि जिस गण के हम सदस्य हैं, जिसके अंग हैं और जो हमारे लिए शरणभूत है, उस गण को हमसे जो अपेक्षाएं हैं, उन अपेक्षाओं की संपूर्ति हम ठीक से कर पा रहे हैं या नहीं? गण केवल सदस्यों का समूह ही नहीं है। गण का अपना संविधान है, उसकी अपनी मर्यादा है, व्यवस्था है, परंपरा है। इन सबका संयुक्त रूप ही एक गण का, शासन का रूप लेता है। जिस गण का अपना कोई संविधान नहीं, व्यवस्था नहीं, भविष्य का कोई आश्वासन नहीं, वह स्वयं को गण की संज्ञा से अभिहित भले ही कर ले, पर उसे शरणदाता गण मानने में कठिनाई होगी। जहां विधान और व्यवस्था है, परंपरा है, गण के संचालक हैं, ऐसा गण अपने आप में शरणदाता बन सकता है और उसके लिए कहा जा सकता है--गणं सरणं गच्छामि।''

•

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण वाव की ओर

कच्छ यात्रा के अन्तिम पड़ाव आडेसर में

३० अप्रेल। प्रातः लगभग तेरह किमी. का विहार कर आचार्यप्रवर आडेसर पधारे। गत १८ मार्च को आचार्यप्रवर ने कच्छ जिले की सीमा में प्रवेश करने के उपरान्त प्रथम प्रवास आडेसर में ही किया था और आज कच्छ की प्रभावी यात्रा का अन्तिम पड़ाव भी आडेसर बना। यहां आचार्यवर का प्रवास ओसवाल साल्ट एंड केमिकल इंडस्ट्रीज में था। आचार्यवर के दूसरी बार पदार्पण पर सिंघवी परिवार हर्षविभोर था।

आज मार्ग व प्रवास व्यवस्था के दायित्व का हस्तान्तरण होना था। कच्छ प्रवास व्यवस्था समिति के संयोजक श्री बाबूलाल सिंघवी व मंत्री श्री शान्तिलाल बागरेचा ने कच्छ प्रवास व्यवस्था में सहयोगी रहे कार्यकर्ताओं के श्रम का उल्लेख करते हुए कच्छ यात्रा की उपलब्धियों की चर्चा की। श्री सिंघवी, श्री बागरेचा व अन्य कार्यकर्ताओं ने अक्षय तृतीया समारोह समिति, वाव के संयोजक श्री चम्पकभाई मेहता, मंत्री श्री प्रवीणभाई मेहता व अन्य कार्यकर्ताओं को ध्वज हस्तान्तरित किया। ध्वज हस्तान्तरण से पूर्व परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने 'कच्छ वालों को जीकारा व वाव वालों को सेवा का दायित्व स्वीकार करने के संदर्भ में मंगलपाठ सुना रहा हूं'--कहकर मंगलपाठ सुनाया। श्री चम्पकभाई व श्री प्रवीणभाई ने अपने विचार व्यक्त किए। मुनि अभिजितकुमारजी, समणी निर्मलप्रज्ञाजी व समणी हिमप्रज्ञाजी ने अपने भावों को प्रस्तुति दी। स्थानीय जैन समाज की ओर से श्री वाडीलाल दोशी ने आचार्यवर का स्वागत किया। आदर्श साहित्य संघ के मंत्री श्री हेमराजजी बैद ने प्रवचनमाला के अन्तर्गत आदर्श साहित्य संघ द्वारा प्रकाशित 'महाप्रज्ञ ने कहा' का ४६वां भाग आचार्यप्रवर को भेंट किया।

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने अपने मंगल प्रवचन में कहा--'निरोध व शोधन साधना के महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं। संवर से निरोध व निर्जरा से शोधन होता है। हमारी आत्मा अनंतकाल से मलिन बनी हुई है। उस मलिनता को धोने के लिए तपस्या की जरूरत है। तपस्या के संदर्भ में मैंने एक छोटी-सी परिभाषा बनाई है **'शुभयोगस्तपः।** शुभ योग, अर्थात मन, वचन व शरीर की निर्मल प्रवृत्ति तप होता है। उससे शुद्धि होती है। जैन समाज में तपस्या खूब होती है। तप के बारह प्रकार निर्दिष्ट हैं और वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें अनाहार की साधना के प्रयोग भी हैं। वैराग्य भाव से अनाहार करना बड़ी तपस्या है। जिसके शारीरिक अनुकूलता बन जाती है, उसके लिए तो यह समीचीन अनुष्ठान है। वस्तुतः परिशोधन के लिए तप की जरूरत होती है।'

कच्छ यात्रा समापन के संदर्भ में आचार्यवर ने कहा--'कच्छ प्रवेश पर हम आडेसर आए और आज तैंयालीस दिन बाद कच्छ में घूमते-घूमते समापन पर पुनः आडेसर में आए हैं। हमारी कच्छ यात्रा गुरुदेव तुलसी की कच्छ यात्रा की अपेक्षा विस्तृत हुई है। डालगणी ने मुनि अवस्था में इस क्षेत्र में पांच चतुर्मास किए। हमारी कच्छ यात्रा आज संपन्न हो रही है। कार्यकर्ताओं ने अपने दायित्व का निर्वहन किया है। कुल मिलाकर यात्रा अच्छी रही। कच्छ यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर मैं डालमुनि को याद करता हूं। मैं तृतीय आचार्य ऋषिराय को भी याद करता हूं, जिन्होंने शेषकाल की यात्रा की थी। गुरुदेव तुलसी ने भी इस क्षेत्र की यात्रा की थी, उनका भी श्रद्धा के साथ स्मरण करता हूं। अब वाव सामने है। वहां के कार्यकर्ता आ गए हैं। हमने कच्छ यात्रा की घोषणा करने से बहुत पहले वाव यात्रा का निर्णय ले लिया था। अब हम वाव के अभिमुख हैं। हमारी सुचिन्तित गुजरात यात्रा गतिमान है।'

'महाप्रज्ञ ने कहा' पुस्तक के सन्दर्भ में आचार्यवर ने कहा--'पुस्तक में मुखपृष्ठ पर छपी आचार्य महाप्रज्ञ की फोटो कितनी प्रसन्न मुद्रा में है। वे मुझे 'महाश्रमण महाश्रमण' कहा करते थे। आज वे प्रत्यक्ष हमारे बीच नहीं हैं। उनकी प्रवचनमाला की इन पुस्तकों से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे।' कार्यक्रम का संचालन मुनि दिनेशकुमारजी ने किया।

अध्यात्म का प्राण है भावविशोधि

१ मई। परम पावन आचार्यवर ने आज प्रातः आडेसर से पीपराला की ओर विहार किया। मार्ग के दोनों ओर दूर-दूर तक फैला कच्छ का रण, कुछ दिनों पूर्व हुई हल्की बारिश के कारण रण में उत्पन्न दलदल और कहीं-कहीं पानी के सूखने से उभरी नमक की पर्त नवागंतुकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी। पूज्यवर ने चवालीस दिनों के प्रवास के पश्चात आज कच्छ जिले से पुनः पाटण जिले में प्रवेश किया। इस अवसर पर कच्छवासियों ने अपनी मंगलभावनाएं श्रीचरणों में अर्पित करते हुए शीघ्र पुनः पदार्पण की प्रार्थना की। वाव के लोगों ने आचार्यवर का श्रद्धासिक्त स्वागत किया। मार्ग में जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य कलापूर्णसूरिजी के शिष्य मुनि कुमुदजी एवं मुनि पुण्यचिदानन्दजी मिले। आचार्यवर से उनका संक्षिप्त वार्तालाप हुआ। लगभग तेरह किमी. का विहार कर आचार्यवर पीपराला पधारे। यहां आपका प्रवास श्री वीर डांगर डगायचा दादा अतिथि भवन में रहा। गुजरात की इस यात्रा में इन गावों को पूज्यवर के प्रवास का पुनः सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने प्रातःकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत अपने मंगल प्रवचन में कहा--'हमारी दुनिया में बुद्धि का महत्त्व है, उसकी अपनी उपयोगिता है। वह एक बल है। बुद्धि के साथ शुद्धि का योग हो तो वह लाभदायी सिद्ध हो सकती है। इसके विपरीत भावों की अशुद्धि के साथ जुड़ी बुद्धि हानिकारक बन सकती है। अध्यात्म के क्षेत्र में भावविशोधि का सर्वाधिक महत्त्व है। भावविशोधि

अध्यात्म का प्राण है। कर्मबंधन और मोक्ष के संदर्भ में बाहरी क्रिया का महत्त्व कम अथवा नहीं होता है। इस संदर्भ में भाव ही मुख्यतः जिम्मेदार होता है। मरुदेवा माता, राजर्षि प्रसन्नचन्द्र, तन्दुल मत्स्य आदि इसके अनेक उदाहरण हैं। साधना की दृष्टि से, निर्मलता की दृष्टि से भावविशोधि बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। लक्ष्य बन जाए और वैसा पुरुषार्थ हो तो भावविशुद्धि की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।'

पूज्यप्रवर ने आगे कहा--'जैन वाङ्मय का एक शब्द है--योग। मन, वचन और काय की प्रवृत्ति योग कहलाती है। अध्यात्म की दृष्टि से योग गौण और भाव प्रमुख होता है। मोहात्मक भाव के साथ संबद्ध योग अशुभ और शुभ भावों के साथ संबद्ध योग शुभ होता है। साधु के लिए यह वांछनीय होता है कि कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) योग में न आए। यदि योग कषायमुक्त रहते हैं तो साधना बहुत निर्मल रह सकती है। हम दिन-रात शुभ भावों में रहने का अभ्यास करें तो हमारा कल्याण सुनिश्चित है।'

समाई है कमाई

२ मई। परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पीपराला से लगभग सत्रह किमी. का विहार कर सांतलपुर पधारे। यहां आपका प्रवास प्राथमिक शाला में रहा।

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने प्रातःकालीन मंगल प्रवचन में कहा--'जैन शासन में सामायिक की साधना का महत्त्व है। साधु और श्रावक दोनों सामायिक करते हैं। साधु की सामायिक यावज्जीवन के लिए होती है। साधु के जीवन भर के लिए तीन करण और तीन योगों से सावद्य योगों का प्रत्याख्यान होता है, इसलिए श्रावक की तुलना में साधु की सामायिक बहुत ऊंची होती है। त्याग के तारतम्य के आधार पर साधु को रत्नों की बड़ी और श्रावक को छोटी माला कहा गया है। श्रावक के बारह व्रतों में ९वां व्रत है--सामायिक। दो करण और तीन योग से सावद्य योग का प्रत्याख्यान होने पर श्रावक के छहकोटि की सामायिक होती है। यदि वचन और काय से अनुमोदन का प्रत्याख्यान कर लिया जाता है तो आठ कोटि की सामायिक हो सकती है और मन से भी अनुमोदन का त्याग कर लिया जाए तो वह नौ कोटि की सामायिक भी हो सकती है। सामान्यतया छहकोटि सामायिक होती है।'

आचार्यप्रवर ने आगे कहा--'सामायिक एक साधना का अनुष्ठान है, राग-द्वेष से मुक्ति की अवस्था में रहने के अभ्यास का अनुष्ठान है। प्रतिदिन एक सामायिक हो जाए तो वह उपलब्धि हो सकती है। चौबीस घंटों में यदि दो-दो मिनट का भी समय निकाल लिया जाए तो एक सामायिक का कालमान प्राप्त हो सकता है। गृहस्थ का जीवन सामान्यतया मोह ग्रंथि, संबंध और परिग्रह का जीवन होता है, जबकि साधु इनसे मुक्त होता है अथवा होना चाहिए। गृहस्थ यह सोचे कि मैं असंयम का जीवन जी रहा हूं। यदि मैं प्रतिदिन एक सामायिक का अभ्यास करूं तो कुछ अंशों में संयम मेरे जीवन में आ सकता है। श्रावक को सामायिक में अखबार, मोबाइल फोन, व्यवसाय आदि की सावद्य बातों से विरत रहने का प्रयास करना चाहिए। सामायिक में श्रावक कुछ अंशों में साधु जैसा बन जाता है। समाई एक आध्यात्मिक कमाई होती है। प्रतिदिन सुबह-सुबह एक सामायिक हो जाए तो यह एक अच्छा उपक्रम हो सकता है। श्रावक को सामायिक का मूल्यांकन करते हुए उसके प्रति जागरूक रहने का अभ्यास करना चाहिए।'

श्रेय का समाचरण करें

३ मई। परमाराध्य आचार्यप्रवर आज प्रातः १४.०२ किमी. का विहार कर सीघाड़ा पधारे। यहां पूज्यप्रवर का प्रवास प्राथमिक शाला में रहा।

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर ने प्रातःकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत अपने पावन प्रवचन में कहा--'हमारी दुनिया में श्रेय और प्रेय दोनों प्रकार के तत्त्व हैं। प्रेय अच्छा तो लगता है, किन्तु वह कल्याणकारी हो, यह जरूरी नहीं है। श्रेय प्रिय भले न हो, किन्तु वह कल्याणकारी होता है। श्रेय और प्रेय दोनों का ज्ञान करने का प्रयास करना चाहिए। उसके पश्चात आचरणीय को ग्रहण करना चाहिए तथा अनाचरणीय के परित्याग का प्रयास करना चाहिए। जिसमें हेय और उपादेय का विवेचन करने की शक्ति होती है, वह अध्यात्म के क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है और व्यावहारिक जीवन में भी अपना विकास कर सकता है। व्यक्ति सुनता है, उसके पश्चात हेय को छोड़ने और उपादेय को ग्रहण करने का प्रयास हो तो सुनना अधिक सार्थक हो सकता है।'

पूज्यवर ने आगे कहा--'साधु की साधना का महत्त्व होता है, इसलिए उनकी वाणी का महत्त्व होता है, उनके प्रवचन को सुनने का प्रयास करना चाहिए। आज कल घर बैठे टेलिविजन के माध्यम से प्रवचन सुना जा सकता है। मानों कुआं प्यासे के पास आ रहा है। सुनना अच्छी बात है, उसके साथ उसे हृदयंगम करने का प्रयत्न और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कई बार गुरु की एक बात भी समस्या की समाधायक बन जाती है। स्वाध्याय के द्वारा भी हेय और उपादेय का ज्ञान तथा समय का सदुपयोग किया जा सकता है। जीवन में समय के सदुपयोग का लक्ष्य रहना चाहिए। दिन-रात में चौबीस घंटे का समय हर व्यक्ति को मिलता है। हमें सहज रूप से प्राप्त समय का अच्छा उपयोग करना चाहिए। निन्दा, गाली आदि में समय लगाना समय का तुच्छ उपयोग है। प्रवचन श्रवण, सत्साहित्य का स्वाध्याय, ध्यान, तत्त्वज्ञान आदि में समय का नियोजन समय का स्वच्छ उपयोग है। जो व्यक्ति समय का तुच्छ उपयोग करता है, वह तुच्छ और जो समय का स्वच्छ उपयोग करता है, वह स्वच्छ बन जाता है।'

पूज्यवर ने प्रसंगवश प्रवचन में कहा--'किसी के द्वारा प्रशंसा और निन्दा करने मात्र से कोई बड़ा या छोटा नहीं बनता। व्यक्ति अपने आचरण के द्वारा छोटा या बड़ा बनता है। आलोचना तो अच्छे व्यक्ति और अच्छे कार्य की भी हो सकती है। आलोचना से डरना नहीं चाहिए। यदि आलोचना में सारपूर्ण बात है तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए, अन्यथा निःसार बात का भार मस्तिष्क में नहीं रखना चाहिए और सत्पथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए।'

व्यस्त, संन्यस्त और मस्त रहें

४ मई। परम श्रद्धेय आचार्यवर ने आज प्रातःकाल सीघाड़ा से कोरडा की ओर प्रस्थान किया। मार्गवर्ती डालड़ी गांव के प्रभुभाई आदि श्रद्धालुओं और ग्रामवासियों के अनुरोध पर आचार्यवर वीरम रबारी के घर पधारे और कुछ क्षण वहां विराजमान हुए। साध्वीप्रमुखाजी आदि साध्वीवृन्द का रात्रि प्रवास यहीं था। आचार्यप्रवर १२ किमी० का विहार कर कोरडा पधारे। स्थानीय निवासी और मुम्बई, सूरत, भुज में प्रवास करने वाले अन्य शाह परिवार पूज्यवर का अपने गांव में स्वागत कर धन्यता की अनुभूति कर रहे थे। सरपंच श्री अर्जुनभाई ठाकुर के नेतृत्व में गांववासियों ने पूज्यवर का भावभीना स्वागत किया। आचार्यवर का प्रवास कोरड़ा पगार केन्द्रशाला में रहा।

प्रातःकालीन कार्यक्रम में श्री अमृतभाई शाह, श्री रमणीकभाई शाह, श्रीमती लीलावती शाह, श्रीमती मंजु संघवी, सुश्री हेमाली शाह ने अपने आराध्य के स्वागत में श्रद्धाभिव्यक्ति दी। शाह परिवार की बहनों ने स्वागत गीत का संगान किया। श्री चंदूभाई जाट ने ग्रामवासियों की ओर से पूज्यवर के स्वागत में अपने श्रद्धासिक्त उद्‌गार व्यक्त किए। मंत्री मुनिश्री का प्रेरक वक्तव्य हुआ।

परमपूज्य आचार्यप्रवर ने अपने पावन प्रवचन में कहा--'जीवन जीने के लिए आहार की आवश्यकता होती है। सामान्यतया व्यक्ति भोजन के बिना ज्यादा समय तक जी नहीं सकता। पूर्वार्जित कर्मों को क्षीण करने के लिए साधना आवश्यक होती है और साधना का माध्यम बनता है शरीर। भोजन शरीर को टिकाए रखने के लिए अनिवार्य होता है। मुख के दो कार्य हैं--भोजन और भाषण। बोलना और खाना--दोनों आवश्यक कार्य हैं, किन्तु दोनों में विवेक का होना अपेक्षित होता है। वाणी का असंयम प्रीति का नाश कर सकता है और भोजन का असंयम भी व्यक्ति को समस्याग्रस्त बना सकता है। व्यक्ति की जीवनशैली यदि व्यवस्थित बन जाती है तो जीवन अच्छा बन सकता है। अच्छे कार्यों में व्यस्त रहना अच्छा है, किन्तु मस्तिष्क में अस्तव्यस्तता नहीं रहनी चाहिए। अच्छे कार्यों में व्यस्त, बुरे कार्यों से संन्यस्त तथा अपने आप में मस्त रहना चाहिए।'

पूज्यवर ने आगे कहा--'सात्त्विक भोजन जीवनशैली को अच्छा बनाने में सहायक बन सकता है। सात्त्विक भोजन भी अधिक नहीं होना चाहिए। ऊनोदरी का अभ्यास रहना चाहिए। साधु के लिए तो भोजन का संयम अच्छा है ही, गृहस्थों के लिए भी वह उपयोगी है। थोड़े से जिह्वास्वाद के लिए असंयम क्यों किया जाए? जीवन के लिए भोजन किया जाता है, न कि भोजन के लिए जीवन होता है। अध्यात्म की साधना में स्वादविजय का महत्त्व है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी स्वादविजय की साधना उपयोगी बन सकती है। जिस वस्तु के प्रति ज्यादा आकर्षण हो, उसे छोड़ने का प्रयास हो तो खाद्य संयम की साधना सध सकती है। अखाद्य और अपेय से बचना और खाद्य संयम तथा स्वादविजय की साधना होती है तो व्यक्ति अपने आपको जीतने की दिशा में आगे बढ़ सकता है।'

पूज्यवर ने प्रसंगवश बालमुनियों की श्लाघा करते हुए कहा--'हमारे बालमुनि किस प्रकार लंबे-लंबे विहार कर रहे हैं। प्रायः नाश्ता किए बिना विहार करते हैं। ये नाश्ता नहीं, रास्ता देखते हैं। छोटे-छोटे संत अपने कंधे पर बोझ लेकर मानों सैनिक की भांति चलते हैं। इतने छोटे-छोटे बच्चों ने साधना का पथ स्वीकार किया है। ये धन्य हैं और इनके माता-पिता भी धन्य हैं, जिन्होंने अपनी संतान को संयम-पथ पर बढ़ने हेतु अनुमति दी। बालमुनियों को देखकर दूसरों को भी प्रेरणा मिलनी चाहिए।'

पूज्यवर के प्रवचन के उपरान्त बालमुनि मृदुकुमारजी, मुनि विवेककुमारजी, मुनि रम्यकुमारजी, मुनि ध्रुवकुमारजी एवं मुनि सिद्धकुमारजी ने पूज्यवर के निर्देशानुसार पृथक-पृथक गीत का संगान किया। आचार्यवर ने अनुग्रहवृष्टि करते हुए पांचों बालमुनियों को पांच-पांच कल्याणक बक्सीस किए। आचार्यवर के स्नेहपूर्ण वात्सल्य एवं बालमुनियों की प्रस्तुति को देखकर उपस्थित जनता हर्षविभोर थी। पूज्यवर ने कोरडा से संबद्ध मुनि सिद्धार्थकुमारजी, समणी करुणाप्रज्ञाजी और नवदीक्षित समणी ख्यातिप्रज्ञाजी का उल्लेख करते हुए उन्हें परोक्ष रूप में अच्छा कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की।

मध्याह्न में स्थानीय निवासी और प्रवासी श्रद्धालु परिवारों को पूज्यवर की निकट उपासना का अवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर श्रद्धालुओं ने विविध संकल्प स्वीकार किए।

आचार्य महाप्रज्ञ महाप्रयाण दिवस का आयोजन

५ मई, बैशाख कृष्णा एकादशी। प्रातः लगभग दस किमी. का विहार कर आचार्यवर झंडाला

पधारे। कोरड़ा गांव से विहार करते समय वहां के एक तेरापंथी परिवार के घर पर आचार्यवर का चरणस्पर्श हुआ। यहां आपका प्रवास सरस्वतीनगर प्राथमिक शाला में हुआ। विद्यालय में तेरापंथ के दशमाधिशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ के चतुर्थ महाप्रयाण दिवस पर समारोह का आयोजन। पूज्य आचार्यप्रवर द्वारा नमस्कार महामंत्र के समुच्चारण से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। मुनि विजयकुमारजी, मुनि राजकुमारजी व साध्वीवृन्द ने गीत का संगान किया। मुनि रजनीशकुमारजी, मुनि अक्षयप्रकाशजी, मुनि अभिजितकुमारजी व साध्वी तन्मयप्रभाजी ने अपने विचार व्यक्त किए। साध्वी प्रशान्तयशाजी ने कविता प्रस्तुत की। अमेरिका यात्रा संपन्न कर गुरुचरणों में पहुंची समणी चैतन्यप्रज्ञाजी ने अपने विदेश प्रवास के अनुभव प्रस्तुत किए।

मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी ने अपने वक्तव्य में कहा--'आचार्य महाप्रज्ञ की निर्विचारता की साधना विशिष्ट थी। वे इन्द्रिय जगत में जीते जरूर थे, पर उनकी इन्द्रियातीत चेतना प्रशस्त थी। वे बाह्य जगत में रहते थे, पर आभ्यन्तर में उनकी खोज निरंतर चलती रहती थी। मैंने कई बार देखा कि कायोत्सर्ग की मुद्रा में वे निर्विचारता की स्थिति में पहुंच जाते। उस स्थिति में उन्हें आनंद की गहरी अनुभूति होती थी। कई बार वे कहते--निर्विचारता की साधना से मुझे विशेष शक्ति मिली, जिसके बल पर मैं हर कार्य में आगे बढ़ता गया।'

मंत्री मुनिश्री ने अपने वक्तव्य में कहा--'आचार्य महाप्रज्ञ महान श्रुतधर आचार्य थे। उनकी हर बात में प्रज्ञा व प्रतिभा का दर्शन होता था। उन्होंने विपुल साहित्य का सृजन किया। अपने श्रुत आराधन के द्वारा तेरापंथ को विद्वानों व प्रबुद्धजनों के बीच विशेष रूप से प्रतिष्ठित किया। गुरुदेव तुलसी के वे सक्षम उत्तराधिकारी थे और उन्होंने महाश्रमणजी को अपने सक्षम उत्तराधिकारी के रूप में संघ के समक्ष प्रस्तुत किया। इसके लिए संघ सदैव उनका ऋणी रहेगा।'

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने अपने अभिभाषण में कहा--'आचार्य महाप्रज्ञ का अपने गुरु तुलसी के प्रति गहरा समर्पणभाव था। पूज्य कालूगणी ने उन्हें दीक्षित कर मुनि तुलसी को सौंपा। मुनि तुलसी ने उनके व्यक्तित्व निर्माण पर ध्यान दिया और उनके भीतर दार्शनिक चेतना जगाई। अपने गुरु के समर्थन के बल पर वे आगे बढ़ते गए। किस क्षेत्र में काम करना, लिखना सब कुछ वे गुरु-निर्देश पर करते। आचार्य तुलसी व आचार्य महाप्रज्ञ की जोड़ी कुछ ऐसी बनी कि आचार्य तुलसी जो बीजारोपण करते, शुरुआत करते, आचार्य महाप्रज्ञ उसको विस्तार दे देते। स्वामीजी के सिद्धान्तों पर आचार्य महाप्रज्ञ का गहरा अधिकार था।'

परम श्रद्धेय आचार्यवर ने अपने मंगल प्रवचन में कहा--'तेरापंथ की आचार्य परंपरा में दो आचार्यों--आचार्य डालगणी व आचार्य महाप्रज्ञ को मैं विलक्षण आचार्य मानता हूं। विलक्षण से मेरा आशय है--जो सामान्य लक्षणों से भिन्न होता है। डालगणी को मैं इसलिए विलक्षण मानता हूं कि वे अपने पूर्ववर्ती आचार्य माणकगणी द्वारा मनोनीत नहीं थे। वे संघ द्वारा मनोनीत व मुनि कालूजी स्वामी (रेलमगरा) द्वारा स्थापित थे। सामान्यतः वर्तमान आचार्य अपने पूर्ववर्ती आचार्य द्वारा मनोनीत होते हैं। आचार्य भिक्षु स्वामी को हम एक बार छोड़ दें तो इस तरह आचार्य बनने वाले एकमात्र आचार्य डालगणी थे। मैं यह भी सोचता हूं कि कभी भी किसी के सामने ऐसी स्थिति आए नहीं, यह अभिलषणीय है। उस विकट स्थिति की बेला में डालगणी जैसे व्यक्तित्व संघ का नेतृत्व करने हेतु मिल गए।

गुरुदेव महाप्रज्ञजी को मैं इसलिए विलक्षण आचार्य मानता हूं कि वे ऐसे एकमात्र आचार्य थे, जो अपने गुरु तुलसी की विद्यमानता में पट्टासीन हुए। अन्य कोई आचार्य अपने पूर्ववर्ती आचार्य के सामने आचार्य पद पर अभिषिक्त नहीं हुए। गुरुदेव महाप्रज्ञजी इस दृष्टि से विलक्षण आचार्य थे,

ऐसा कहा जा सकता है।'

आचार्यवर ने आगे कहा--'मैं आचार्य तुलसी के पास रहा। आचार्य महाप्रज्ञजी के पास रहा। दोनों परमपूज्य गुरुओं को निकटता से देखने का मुझे मौका मिला। आचार्य महाप्रज्ञजी के जीवनकाल में हुए महत्त्वपूर्ण कार्यों में एक कार्य था आगम संपादन व शोध। मैं इसे जैन शासन को दी गई उनकी महती सेवा मानता हूं। इस महत्कार्य के लिए प्रज्ञा व प्रतिभा की जरूरत होती है। आचार्य तुलसी व आचार्य महाप्रज्ञ परस्पर इतने अभिन्न थे कि प्रेक्षाध्यान व जीवनविज्ञान को किसी का भी माना जा सकता है। दोनों ने संघ में नवोन्मेष लाने का प्रयास किया। आचार्य महाप्रज्ञजी ने प्रलंबकाल से गुरुदेव तुलसी के महामंत्री की तरह कार्य किया था।'

आचार्य महाप्रज्ञ के उपकार की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने कहा--'मैं वर्षों से आचार्य महाप्रज्ञ से जुड़ा हुआ था। आगम संपादन व संघीय व्यवस्था से भी जुड़ा। गुरुदेव तुलसी ने मुझे उनके साथ ऑफिशियली जोड़ा। सन् १९८६ के उदयपुर मर्यादा महोत्सव के अवसर पर युवाचार्य महाप्रज्ञ के आन्तरिक सहयोगी के रूप में मेरी नियुक्ति हुई। मुझ पर उनका बहुत उपकार है। उन्होंने मुझे आगे बढ़ाया। प्राथमिक संघीय कार्यों में मुझे सिंघाड़ों के अग्रणी साधु-साध्वियों के नामों की सूची बनाने का निर्देश दिया, फिर तेरापंथ की संघीय व्यवस्था के आकाश में उड़ने का अवसर प्रदान किया। कार्य करने में उन्होंने मुझे कुछ स्वातंत्र्य प्रदान किया। उनका विशिष्ट वात्सल्यभाव मुझे प्राप्त हुआ। कई बार वे कहते--'यात्रा तो अब महाश्रमण की है। मैं तो प्रवचन आदि के माध्यम से इनका सहयोग करता हूं। इसे मैं उनकी अनन्य कृपा, माइतपना और शिष्य के प्रति वात्सल्यभाव मानता हूं। व्याख्यान व अन्य कार्य हेतु मैं उनके पास आज्ञा लेने जाता तो फरमाते--'शाश्वत आज्ञा है।' मुझे उनकी महान करुणा प्राप्त हुई। गुरुदेव का चिंतन उदात्त था। उनका प्रवचन गौरवपूर्ण होता था। उनकी भाषा शुद्ध व स्पष्ट हुआ करती थी। उनका संयम पर्याय प्रलंब रहा। थोड़े से आचार्यकाल में लंबी यात्राएं कीं। ज्योतिष में उनकी रुचि थी। संस्कृत भाषा का गहरा अध्ययन था। उनका पांडित्य विशिष्ट था। उनका साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। आज से तीन वर्ष पूर्व सरदारशहर में उनका महाप्रयाण हो गया। आज उनके महाप्रयाण दिवस पर हम उन्हें अपनी श्रद्धाप्रणति अर्पित करते हैं। उस महान व्यक्तित्व से हमें प्रेरणा प्राप्त होती रहे।'

आचार्यवर ने आगे कहा--'समणी चैतन्यप्रज्ञाजी व समणी उन्नतप्रज्ञा अमेरिका से आई हैं। काम करने वाली विदुषी समणी हैं। जैविभा संस्थान से भी संपृक्त रही हैं। जैनदर्शन में इनकी अच्छी गति है। समणी उन्नतप्रज्ञा ने अंग्रेजी भाषा का अच्छा विकास किया है, यह संभावना लग रही है।' झंडाला आगमन के संदर्भ में आचार्यवर ने कहा--'प्राप्त जानकारी के अनुसार पूज्य गुरुदेव तुलसी कुछ देर के लिए यहां पधारे थे। हम तो दिन-रात का समय लेकर आए हैं। घुणाक्षर न्याय से आज अनायास ही गुरुदेव महाप्रज्ञजी के महाप्रयाण का कार्यक्रम यहां आयोजित हो गया। सुना कि गांव में एक तेरापंथी शाह परिवार है। गांव में धर्म की भावना बनी रहे।'

गांव की ओर से श्री नरेन्द्र शाह, श्री कान्तिलाल शाह, केशवलाल शाह, डा.स्मित शाह, पूर्व प्राचार्य श्री मणिलाल ठक्कर, प्राध्यापक श्री अंबादान गढ़वी ने पूज्यप्रवर का स्वागत किया। कार्यक्रम का संचालन मुनि दिनेशकुमारजी ने किया।

प्रयत्नशील रहें आत्मा को मित्र बनाने की दिशा में

६ मई। प्रातः लगभग १४ किमी. का विहार कर आचार्यप्रवर इन्द्रवा पधारे। झंडाला से विहार

Postal Reg. No. DL (C)-01/1243/12-14 Fri.-Sat.
Date of Publication : 11-05-2013 L.No.-U (C) 200/2012-2014
Licence to Post without Pre-payment
Regd. No. 61758/95 Office of Posting N.D.P.S.O.

करते समय कुछ घर पूज्यवर के चरणस्पर्श से लाभान्वित हुए। मध्यवर्ती गांव गांजीसर के राम मन्दिर में आचार्यवर ने खड़े-खड़े गांववासियों को प्रेरणा प्रदान की। इन्द्रवा में आचार्यवर का प्रवास प्राथमिक शाला में हुआ।

विद्यालय परिसर में आयोजित प्रातःकालीन कार्यक्रम में परम श्रद्धेय आचार्यवर ने अपने पावन प्रवचन में कहा--'हमारे शरीर के भीतर आत्मा नाम का तत्त्व विद्यमान है। आत्मा के अभाव में शरीर जड़ हो जाता है। जबकि उसके साथ शरीर सचेतन बन जाता है। स्वकृत कर्मों के अनुसार आत्मा सुख-दुःख पाती है। पुण्य से सुख व पाप से दुःख प्राप्त होता है। निश्चयनय से हमारी आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है। व्यवहार नय में दूसरा व्यक्ति मित्र भी हो जाता है और शत्रु भी हो सकता है। अपनी आत्मा जिस रूप में मित्र है, उस रूप में दूसरा कोई नहीं है। अन्य किसी को मित्र बनाएं, न बनाएं, पर आत्मा को अपना मित्र अवश्य बनाएं। स्व-आत्मा को मित्र बनाने के लिए अहिंसा, संयम व तप की आराधना अपेक्षित है।

आत्मा को मित्र बनाने के उपायों का विवेचन करते हुए आचार्यवर ने कहा--'जीवन में जो अहिंसा का प्रयोग करता है, वह सत्कर्म और पुण्य का उपार्जन कर लेता है। किसी से वैरभाव नहीं रखना, किसी को कष्ट देने का इरादा नहीं करना, जो व्यवहार हम अपने लिए नहीं चाहते, वैसा व्यवहार दूसरों के प्रति न करना, यह अहिंसा व अनुकंपा का भाव है। अहिंसक भाव वाले व्यक्ति का यह लक्ष्य रहता है कि उससे सबको चित्तसमाधि पहुंचे। वह कभी हिंसक प्रतिकार नहीं करता। ऐसा व्यक्ति आत्मा को मित्र बनाने में सफल हो सकता है। असंयम कष्टकारक और संयम सुखकारक होता है। अणुव्रत संयम की प्रेरणा देने वाला आन्दोलन है। इसका सूत्र ही है--'संयमः खलु जीवनम्।' असंयम से संयम, अज्ञान से ज्ञान, भोग से योग व राग से त्याग की ओर की ओर गतिमान हों, आत्मा को तप से भावित बनाएं। लक्ष्य बनाएं एवं लक्ष्यानुरूप गति करें तो लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। हम अपनी आत्मा को मित्र बनाने की दिशा में सदैव प्रयत्नशील बने रहें।' आचार्यवर ने इन्द्रवा के लोगों को नशामुक्त बनने की प्रेरणा दी। आचार्यवर के प्रवचन से पूर्व मंत्री मुनिश्री का प्रेरक अभिभाषण हुआ।

आचार्यप्रवर ७ मई को भाभर, ८ मई को एटा, ९ मई को माडका एवं १० मई को वाव पधार गए हैं। कार्यक्रमों की विस्तृत रिपोर्ट पढ़ें आगामी विज्ञप्ति में।

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर १५ मई को वाव से लाडनूं की ओर प्रस्थान करेंगे। लाडनूं तक का यात्रा पथ पूर्व विज्ञप्ति में पहले ही प्रकाशित हो चुका है। वाव से लाडनूं के बीच जोधपुर ही ऐसा शहर है, जहां पूज्यप्रवर लगभग एक सप्ताह (विभिन्न उपनगरों में) प्रवास करेंगे। अवशेष यात्रा में प्रायः एक-एक दिन का प्रवास ही संभावित है। दर्शन-उपासना हेतु आने वाले श्रद्धालु पूर्व प्रकाशित यात्रा पथ को ध्यान में रखकर ही अपना कार्यक्रम सुनिश्चित करें। आदर्श साहित्य संघ का शिविर कार्यालय अहर्निश पूज्यप्रवर की सेवा में है, किन्तु पत्र व्यवहार की दृष्टि से अब हमारा पता है--

केशवप्रसाद चतुर्वेदी, प्रबन्धक-आदर्श साहित्य संघ, द्वारा-श्री मर्यादाकुमार कोठारी, 'ज्ञानम्' फर्स्ट फ्लोर, मंगल टावर, बिश्नोई धर्मशाला के सामने, रातानाडा, जोधपुर- ३४२००१ (राज.)
मोबाइल नं. ०९६८००५५३८१, ०९३५२४०४६४१
दिल्ली कार्यालय का फोन ०११-२३२३४६४१ Email : adarshsahityasangh@yahoo.com

●

आदर्श साहित्य संघ, २१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-११०००२ के लिए बच्छराज कठौतिया ट्रस्टी द्वारा प्रकाशित तथा पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२ से मुद्रित। सम्पादक : **केशवप्रसाद चतुर्वेदी।**